ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-8* October- 2020
Innovation The Research Concept

समकालीन यात्रा साहित्य में राष्ट्र बोध का स्वरूप

The Form of Nationalism in Contemporary Travel Literature"

Paper Submission: 12/10/2020, Date of Acceptance: 20/10/2020, Date of Publication: 21/10/2020

रामदेव सिंह भामू
सह–आचार्य,
हिन्दी विभाग,
राजकीय विज्ञान महाविद्यालय,
सीकर, राजस्थान, भारत

सारांश

यात्रा साहित्य में राष्ट्रवाद या देशानुसार कविता से भिन्न परिपाटी पर अभिकथन हुआ है। देश की भूमि और देश की संस्कृति के अतिरिक्त देश के निवासियों का समावेश राष्ट्र की अवधारणा के अंतर्गत होता है। राष्ट्रवाद से भिन्न बोध के स्तर पर प्रति फलित होकर उदार अंतर्दृष्टि से समिवेशित होता है। हिन्दी के अस्सीतर यात्रावृत्तों में राष्ट्रबोध की अभिव्यक्ति तार्किक व किंचित भिन्न रूप में हुई है।

In travel literature, nationalism has been stated in a different way. The land of nation and the culture of nation in addition to the inclusion of citizens are incorporated into the concept of nation. Different from nationalism, at the level of comprehension, the idea of nation is included in insight. In the travelogens of 1980's the expression of nationalism has been logical and different.

मुख्य शब्द : राष्ट्र, राष्ट्रबोध, राष्ट्रवाद, संस्कृति, समकालीन यात्रावृत्त, जन संपृक्ति ।

Nation, Nationality, Nationalism, Culture, Contemporary Travelognes, People Connectivity

प्रस्तावना

''भूमि, भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति, इन तीनों के सम्मिलन में राष्ट्र का स्वरूप बनता है।''[1]

वैश्वीकरण, मृत्युवाद, अंतवाद, मूल्यहीनता से आक्रांत इस दौर में जब 'राष्ट्र', 'राष्ट्रवाद' जैसे संप्रत्ययों को आधुनिकता, प्रगतिशीलता व बुद्धिजीविता का विरोधी व पिछड़ेपन व संकीर्णता के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। साहित्य खेमों, वर्गो व विमर्शो में खंडित होकर अपने व्युत्पतिपरक 'सहित' भाव को तिरस्कृत कर रहा है, तब राष्ट्र बोध जैसे संयोजक सम्प्रत्यय पर चर्चा करना विशेष चुनौतीपूर्ण है। ऊपर उद्धृत डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का मत पश्चिम के संकीर्ण 'नेशनलिज्म' के राष्ट्र राग की स्वाभाविकता व अपरिहार्यता को व्यंजित करता है।

अकेली भूमि राष्ट्र नहीं, अकेला जन राष्ट्र नहीं, अकेली संस्कृति राष्ट्र नहीं। तीनों का सम्मिलित सहकार ही राष्ट्र को अस्तित्वमान करता है। अतः राष्ट्रीयता न अन्तरराष्ट्रीयता की विरोधी है, न आधुनिकता की, न बौद्धिकता की। यह अनपेक्षित व गैरजरूरी नहीं प्रत्युत 'राष्ट्र भावना का देश विशेष में वही स्थान है जो भिन्न अवयव वाले शरीर में चेतना केंद्र का होता है। पाँव के नीचे आ जाने वाले अंगारे की जलन या फूल का स्पर्श पुलक दोनों की अनुभूतियाँ जैसे मस्तिष्क का चेतना केंद्र सारे शरीर में पहुँचा देता है, एक अंग की पीड़ा या पुलक को सारे शरीर की बना देता है, उसी प्रकार राष्ट्रीयता प्रत्येक सुख–दुःखात्मक स्थिति को विशेष भूमि खण्ड की मानव समष्टि में व्यापकता दे देती है।'[2]

राष्ट्रवाद व राष्ट्र बोध में प्रायः अंतर नहीं किया जाता जबकि दोनों एक नही है। राष्ट्रवाद में बौद्धिक मताग्रह का दबाव व एक सीमा तक संकुचन भाव संभव है पर राष्ट्र बोध तो पुष्प गंधवत स्वाभाविक धर्म है। 'वाद' में प्रबलता अधिक है, 'बोध' में सहजता। वाद पंप की हवा है, बोध सहज वातास।

समकालीन साहित्यिक जगत् अनेक आग्रहों, पूर्वाग्रहों, मतों व वादों से ग्रस्त होकर राष्ट्र बोध से निरपेक्ष अनंत खंडित रागों की साधना में अपनी–अपनी ढपली लेकर संलग्न है, तब इस देह राग में मग्न साहित्य में देश राग की

तलाश दुष्कर पर रोचक है और जब बात साहित्य की गौण विधा यात्रावृत्त में इसकी तलाश की हो तो जिज्ञासा और भी बलवती हो जाती है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य राष्ट्र की संकुचित 'वाद' ग्रस्तता से भिन्न व्यापक अवधारणा के आलोक में यात्रावृत्तों में इसके अभिव्यक्ति के स्वरूप की पड़ताल करना है। यात्रावृत्त का रचना संसार राष्ट्र समान्विति से अल्प संपृक्त रहा है और उसी संसाक्ति का स्वरूप एकांशीय रहा है। अलग–अलग रचनाकारों ने राष्ट्र के संगठक अवयवों के अलग–अलग रूपों को अलग–अलग दृष्टिकोण से अभिव्यक्ति दी है, उसकी पड़ताल कर अभिव्यंजित अंश को रेखांकित करना प्रस्तुतालेख का लक्ष्य रहा है।

यात्रा साहित्य में राष्ट्र बोध का स्वरूप

यात्रा साहित्य की प्रकृति काव्य व कथा साहित्य से भिन्न है अतः उसमें राष्ट्र बोध की अभिव्यंजना का स्वरूप भी उक्त दोनों से भिन्न होना स्वाभाविक है। राष्ट्रीय काव्य धारा या राष्ट्रवादी कथा साहित्य के समान यात्रा साहित्य की कोई मत–वाद से अन्वित धारा नहीं हो कती। यात्रावृत्तों में राष्ट्र बोध का रूप विकेन्द्रित एवं सहज रूप में लब्ध है। प्रेम परिचय या साहचर्य जनित होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उचित ही कहा है कि 'परिचय प्रेम का प्रवर्तक है। बिना परिचय के प्रेम नहीं हो सकता। यदि देश प्रेम के लिए हृदय में जगह करनी है तो देश के स्वरूप से परिचित और अभ्यस्त हो जाओ।[3] कहना न होगा कि यात्रावृत्तों में देश के स्वरूप से परिचय जनित प्रेम ही अभिव्यंजित होता है। यात्रा साहित्य का देशानुराग प्रत्यक्ष साक्षात्कार जनित होता है, जिसकी अभिव्यक्ति अग्र रूपों में विवेचित की जा सकती हैः

राष्ट्र की भूमि के प्रति राग बोध

समकालीन यात्रावृत्तकारों के राष्ट्र बोध का प्रथम आयाम राष्ट्र भूमि के सौन्दर्य पर रीझ–बुझ के रिस्ते के रूप में है। यात्री निर्झर कलनाद में राष्ट्र की खिलखिलाहट सुनता है, नदी की लहरीली पदचाप में राष्ट्र माता की पग ध्वनि सुनता है, मंद बयार में राष्ट्र के श्वास–प्रश्वास का अनुभव करता है। समकालीन यात्रावृत्तों, 'हिम शिखरों की छाया में' (विष्णु प्रभाकर), 'स्पीति में बारिश', 'किन्नर धर्म लोक', 'लदाख में राम विराग', 'अरूणाचाल यात्रा' (कृष्णनाथ), 'सौन्दर्य की नदी नर्मदा', 'अमृतस्य नर्मदा', 'तीरे–तीरे नर्मदा' (अमृतलाल वेगड़)', 'दर्रा दर्रा हिमालय' (अजय सोडानी), 'सफर एक डोंगी में डगमग' (राकेश तिवारी), 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख' (कृष्ण सोबती) आदि में देश भूमि व प्रकृति के साथ रीझ–बुझ भरी इबारत बाँधी जा सकती है। मातृभूमि के प्रति यह रामानुबंध नैसर्गिक सुषमा के बखान में अधिक व्यक्त हुआ है। यायावर कृष्णनाथ मेघालय के शिलांग में अरूणोदय का वर्णन वेद के मंदद्रष्टा ऋषि परंपरा में करते हैं –

''पूरब से दिवा की पुत्रियाँ अरूण आभा लिए अवतरित हो रही हैं। अरूणशिखी बॉग दे रहा है। चीड के वन में 'काफल पक्को', 'काफल पक्को' का स्वर तिर रहा है, और अन्य चिड़ियों का समवेत गान भी। पूरब–पश्चिम सब समरस हैं। वृष्टि हो रही है।

जल की एक झीनी चादर आकाश से पृथ्वी पर्यंत तन गई है। न यह दिखती है, न छिपती।''[4]

राष्ट्र वसुधा के रूपार्चना के अतिरिक्त जब यात्रिक जब उसके स्वाभाविक स्वरूप को उद्योग या विकास के नाम पर विकृत होते देखता है तो वह इस क्षरण से क्षुब्ध व चिंतातुर हो उठता है। धरा व प्रकृति के ऐसे ही विद्रूपण पर निर्मल वर्मा का यात्री चिंतन और चिंता के विभिन्न स्वर में कहता है –

''शायद पैंतीस वर्ष पहले हम कोई दूसरा विकल्प चुन सकते थे, जिसमें मानव सुख की कसौटी भौतिक लिप्सा न होकर जीवन की जरूरतों द्वारा निर्धारित होती। पश्चिम जिस विकल्प को खो चुका था भारत में उसकी संभावना खुली थी क्योंकि .... भारत की सांस्कृतिक विरासत यूरोप की तरह म्यूजियम और संग्रहालयों में जमा नहीं थी– वह उन रिश्तों में जीवित थी, जो आदमी को उसकी धरती, उसके जंगलों, नदियों– एक शब्द में कहें तो उसके समूचे परिवेश के साथ जोड़ते थे।''[5]

देश धरा के प्राकृतिक सौंदर्य और वैभव पर समकालीन यायावर जितना आस्था का भाव रखता हैं, उसी प्रकार उस वैभव को लुटते देखकर वह गहरी पीड़ा व क्षोभ से भी भर उठता है। इसके साथ यात्रावृत्तों में राष्ट्र बोध का वह सुपरिचित व प्रोज्ज्वल रूप भी वर्तमान है जो देश की सीमांत पर खड़े वीर प्रहरियों अर्थात् सैनिकों के प्रसंग में दृष्टिगोचर होता है। उस समय कलमकार की कलम शूरवीरों के शौर्य को सलाम करती प्रतीत होती है। कभी–कभी यात्री स्वयं की जान जोखिम में डाल कर ऐसे स्थलों की यात्रा के लिए पर्युत्सुक हो उठता है। नब्बे के दशक में जब कश्मीर आतंक की भीषण दावानल में दहक रहा था, कमलेश्वर दूरदर्शन के प्रतिनिधि के रूप में 'पहचान' और इस कारण 'जान' का खतरा उठाकर हालात का जायजा लेने जाते हैं एवं सैनिकों के विकट हालात पर लिखते हैं–

''एकांत नीरवता और आसन्न मृत्यु की आशंका के बावजूद वे सैनिक अपना मानसिक संतुलन नहीं खोते। अपने व्यक्तिगत तनाव को भीतर दफनाकर वे देश की सुरक्षा के तनाव को समाप्त करने के संकल्प को अपना तनाव बना लेते हैं और खामोशी से देश की जरूरत के लिए समर्पित हो जाते हैं। वे देश के लिए साँस लेती पत्थर की मूर्तियों में बदल जाते हैं .....।[6]

ऐसी ही भयावह परिस्थितियों के बीच सैनिकों की चट्टानी दृढ़ता का आख्यान मनोहरश्याम जोशी की यात्रा कृति 'सीमांत डायरीः कश्मीर से कच्छ' में मिलता है। लेखक लिखता है कि 'बेड़ियाघाट मे और अन्यत्र मुझे कोई जवान ऐसा नहीं मिला जो रण के कष्टप्रद और भयावह परिवेश के कारण तन या मन से कहीं टूटा हो।'[7]

कृष्णनाथ कृत 'स्पीति में बारिश' में लाहुल के केप्टन भीमचंद्र द्वारा सन् 1948 में पाकिस्तानी कबाइली आक्रमण के समय दिखाए गए अद्भूत साहस, शौर्य एवं त्याग का ओजस्वी वर्णन है। युद्ध के दौरान ही केप्टेन भीमचंद्र को पत्नी के देहांत का हृदयविदारक समाचार

मिलता है पर वह वीरवर सब कुछ सहकर भी लद्दाख की रक्षा करता है और स्वतंत्र भारत के इतिहास की ऐसी पहली विभूति बनता है जिसके शौर्य को छह माह में ही सरकार दो बार वीरचक्र देकर सलाम करती है।;[8] डॉ. राजेश कुमार व्यास के 'कश्मीर से कन्याकुमारी' तथा अशोक जेरथ कृत 'अनाम यात्राएं' में बाबा हरभजनसिंह की शौर्यपूर्ण कहानी है, जिनका मंदिर बनाकर आज भी सैनिक पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त अंडमान निकोबार स्थित कालापानी के नाम से कुख्यात सेल्युलर जेल के प्रसंग भी यात्रावृत्तों में राष्ट्र बोध का स्वर तीव्रता से निनादित करते हैं। पर इसका अभिप्राय यह कतई नहीं कि यात्रावृत्तकार केवल राष्ट्र बोध के भावुक स्वर का गायक है प्रत्युत वह उतनी ही गंभीरता व बेबाकी से आज के चर्चित मुद्दों पर भी अपनी राय रखता है। 'मानवाधिकार' के प्रश्न कर कमलेश्वर लिखते हैं–

''हम आतंकवादियों और कानून से विद्रोह करने वालों के मानवाधिकारों की बात उठाते हैं पर कानून के तहत अपनी कर्तव्य सीमा में बँधे हुए सीमा सुरक्षा बल के सैनिकों के मानवाधिकारों का सवाल नहीं उठाते, यह हम पत्रकारों की कृतघ्नता और अमानवीयता है।'[9]

राष्ट्र की संस्कृति के प्रति राग बोध

समकालीन यात्रा साहित्य में राष्ट्र बोध का द्वितीय आयाम भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा एवं अनुराग भाव है। श्रीराम परिहार कृत 'संस्कृति सलिला नर्मदा' , गोविंद मिश्र प्रणीत 'धुंध भरी सुखी', 'दरख्तों के पार शाम', 'झूलती जड़ें', 'परतों के बीच', 'और यात्राएँ', वेगड़ जी कृत नर्मदा त्रयी, कृष्णनाथ की यात्राकृतियों, अजय सोडानी व राकेश तिवारी के यात्रावृत्तों में भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों के प्रति आस्था भाव के साथ तार्किकता का युग्मन भी मिलता है। शिवानी जी भारतीय पूजानुष्ठान तथा विवाह पद्धति के महत्व अपने 'यात्रिक' में व्यक्त करती हैं। तीर्थ स्थलों के प्रति आस्था भाव भी बहुत से रचनाकारों में प्राप्त होता है। अमृत लाल वेगड़ तो 'शिवतनया' नर्मदा के प्रति जो गहरी भक्ति भावना रखते हैं उसकी तुलना तो मध्य युगीन भक्त कवियों की गहरी आस्था से ही की जा सकती है –

''मैं तुम्हारे तट पर आता था, कई–कई दिन चलता था, फिर घर वापस आ जाता था। लेकिन एक बार ऐसा आऊँगा कि वापस नहीं जाऊँगा। हमेशा के लिए मीठी नींद सो जाऊँगा। तब थपकी देकर सुला देना। बस यही एक आकांक्षा है, इसे पूरी करना माँ!''[10]

विवेच्य काल के यात्रावृत्तकार संस्कृति, धर्म आदि के प्रश्नों पर मतानुगतिक अनुमोदन की प्रवृत्ति से परिचालित न होकर तर्क व बुद्धि की कसौटी पर परखते हैं, युग ग्राहय तार्किक व्याख्या करते हैं, विवेकपूर्ण व्याख्या करते हैं। वेगड़ जी द्वारा पाप–पुण्य, कर्मफल, पुनर्जन्म आदि की तार्किक विवेचना, राकेश तिवारी द्वारा पौराणिक प्रसंगों की आधुनिक व्याख्या के ही क्रम में गोविंद मिश्र ने राम, कृष्ण आदि के बनिस्बत वेदव्यास, परशुराम, हनुमान आदि की चिरंजीविता के प्रतीकार्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'ये एक–एक विभूति किसी न किसी चीज का प्रतिनिधित्व करती है, जो पृथ्वी पर सृष्टि बने रहने के लिए आवश्यक है– जैसे वेदव्यास साहित्य का, परशुराम लिप्सा से दूर चिरंतन विद्रोह का। हनुमान मैत्री, भक्ति और जुड़ाव का ... ।''[11]

अपनी भाषा, वेश भूषा, खान पान यानी संस्कृति के विभिन्न पक्षों का प्रचलन अन्य देशों में देखना भी संस्कृति एवं स्वदेश के प्रति गौरव भाव जगाता है। समकालीन यात्रावृत्तों में ऐसे अनेक प्रसंग विद्यमान है। महान् संस्कृतज्ञ प्रो. सत्यव्रत शास्त्री के सन् 2012 में प्रकाशित यात्रा ग्रंथ 'चरन् वै मधु विन्दति0ः चलता गया, मधु मिलता गया', में जैसे बृहत्तर भारत में प्रसरित भारतीय संस्कृति, संस्कृत भाषा के प्रभाव व प्रसार का प्रामाणिक आख्यान नही प्रस्तुत करता है। एशिया में रामकथा के विविध रूप, भारतीय संस्कृति का भारतेतर प्रसार, विश्व के संस्कृतज्ञों से संवाद, भारतीय धर्म–साधना, योग के वैश्विक प्रभाव का एक गरिमामय चित्र यह कृति पाठक के समक्ष रखती है। ललित सुरजन, हिमांशु जोशी, कृष्णनाथ, पुरूषोत्तम अग्रवाल, उर्मिला जैन की यात्रा कृतियों में भारतीय संस्कृति के विदेश में प्रसार के प्रमाण व उसके प्रति गौरवभाव की अभिव्यंजना हुई है। प्रो. पुरूषोत्तम अग्रवाल की कृति 'हिंदी सराय अस्त्राखान वाया येरेवान' तो अत्यंत शोधपूर्ण यात्रावृत्त का निदर्शन प्रस्तुत करती है। प्रो. अग्रवाल रूस के येरेवान में स्थित वह हिंदी सराय खोज निकालते हैं, वह 'तोकुर दोरा (ठाकुर द्वारा), तीन सदी पूर्व के उसके चित्र, पूजा पद्धति का तत्कालीन यात्रियों के ग्रंथों में उल्लेख आदि प्रमाणों द्वारा वे पश्चिम के विद्वानों द्वारा प्रचारित इस झूठ का पर्दाफाश भी कर देते हैं कि 'समुद्र यात्रा को भारत पाप समझता था।'

समकालीन यात्रावृत्तों में जहाँ भारतीय सांस्कृतिक प्रसार के प्रति गौरव भाव है, वहीं विदेशियों द्वारा भारतीय अवधारणाओं व गलत व्याख्या के प्रति अस्वीकृत व प्रतिकार का भाव भी है। कृष्णदत्त पालीवाल 'जापान में कुछ दिन' नामक यात्रा दैनिकी में अंग्रेजी समाचार पत्रों के भारत के विषय में दुराग्रह व अज्ञतापूर्ण दृष्टिकोण पर लिखते है –

''ईसाई धर्म के प्रतिमानों से या मानसिकता से हिंदू धर्म की सही व्याख्या नहीं की जा सकती है। इतनी सी बात पश्चिमवाद वालों की बुद्धि में नहीं घुसती।

भारत और हिंदू धर्म को यदि आप सही अर्थ संदर्भ में नहीं समझते हैं, तो उस पर टीका–टिप्पणी करने वाले आप कौन होते हैं? कोई भी प्राचीन संस्कृति, परंपरा किसी को यह छूट नहीं दे सकती कि आप उसके प्रत्ययों–अवधारणाओं, प्रतीकों को शेखचिल्ली बनकर भ्रष्ट करें।''[12]

स्पष्ट है समकालीन यात्रा साहित्य सांस्कृतिक गौरव से अनुप्राणित होने के साथ दुराग्रहों, मिथ्या प्रचार प्रोपेगैंडा के प्रति आक्रोश के स्वर से तनिक तिलमिलाया हुआ भी है।

राष्ट्र जन के प्रति राग बोध

भूमि व संस्कृति के प्रति 'प्रति पुरातन' के अतिरिक्त राष्ट्र बोध का तीसरा आयाम है जन संपृक्ति व जनानुराग। राष्ट्र बोध की अनिवार्य परिणतिस्वदेश बंधुओं के प्रति रामासक्ति होने में है। केवल भूमि और संस्कृति अनुराग तो अधूरा राष्ट्रवाद है, यह स्वदेश जन के सुख–दुख में साक्षी और साझी भाव से पूर्णता पाता है।

देशवासियों के उल्लास में हुलसित होकर, अवसाद व अभाव में व्यथित होकर जब उनकी समुन्नति मे सन्नद्ध होता है, तभी राष्ट्र बोध का क्रियमाण रूप सामने आता है। समकालीन यात्रावृत्तों (बादलों में बारूद–मधु कांकरिया) में वे ग्रेजुएट अशोक जी हैं जो झारखंड के आदिवासियों की दुरवस्था से द्रवित हो, सहज लब्ध सुख–सुविधा, नौकरी, यहाँ तक कि विवाह तक को आजीवन स्थगित कर अपने देश बंधुओं के उत्थान में समूचा जीवन होम देते हैं। हिमालय में वृक्षारोपण को समर्पित 'बलमा' जैसी नारियाँ है।[13] यात्रावृत्तों के पात्र ही नहीं स्वयं यात्रिक भी साधारण नर–नारी की पीड़ा से व्यथित–द्रवित है। चाँद के कलंकपूर्ण धब्बों को उसके गुदने मानने वाले नर्मदा के अमृत पुत्र अमृतलाल वेगड़ की दृष्टि में कलंक क्या है, यह देखना समीचीन होगा–

''मैं नदी के किनारे स्केच कर रहा था। इतने में एक कृशकाय स्त्री नहाने आई। नहाकर उसने पहनने के लिए साड़ी निकाली। वह उसे एक छोर से दूसरे छोर तक दो बार देख गई, लेकिन साड़ी इतनी तार–तार हो चुकी थी कि उसकी समझ में नहीं आ रहा थ कि उसे कहाँ से पहने। किसी तरह उसने अपनी लज्जा ढाँकी और चली गई।

यह था कलंक! मेरा सिर लज्जा से झुक गया। मुझसे और स्केच नहीं बनाए गए।''[14]

इसी प्रकार आम जन की पीड़ा से विचलित कर देने वाला प्रसंग मधु कांकरिया की कलम से चित्रित हुआ है–

''दरअसल मंत्र मुग्ध सी मैं तंद्रिल अवस्था में ही मैं थोड़ी दूर तक निकल आई थी कि अचानक पाँवों पर ब्रेक सी लगी... जैसे समाधिस्थ भाव में नृत्य करती किसी आत्मलीन नृत्यांगना के नुपुर अचानक टूट गए हों। मैने देखा इस अद्‌वितीय सौदर्य से निरपेक्ष कुछ पहाड़ी औरतें पत्थरों पर बैठी पत्थर तोड़ रही थी। गुथे आटे सी कोमल काया पर में कुदाल और हथौड़े! कइयाँ की पीठ पर बँधी डोको (बड़ी टोकरी) में उनके बच्चे भी बँधे हुए थे।''[15]

इसी के समानांतर है कुष्णनाथ व सुदर्शन वशिष्ठ के यात्रावृत्तों में आए 'छम छेशु' के मेलों में नाचते नर–नारियों के प्रति एवं 'जुले–जुले' करते बच्चों के प्रति उल्लसित आनंदभाव की व्यंजना हुई है जो जनानुराग का ही प्रकटीकरण है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः राष्ट्र संगठन के त्रिक् में भूमि, जन व संस्कृति का सहभाव है। अतः राष्ट्र बोध का स्वरूप भी त्रिआयामी है। समकालीन हिंदी यात्रा साहित्य में राष्ट्र संरचना की तत्वत्रयी के प्रति अनुराग भाव की व्यंजना हुई है। यह समकालीन काव्य एवं कथा साहित्य से इस रूप से भिन्न है कि यह केवल भाव सत्य न होकर यथार्थ है यथा साक्षात्कार एवं प्रत्यक्ष अनुभव जनित है। यात्री मानस राष्ट्र की तत्वत्रयी– भूमि, जन व जन संस्कृति की ऋद्‌धि देखकर गर्वित व पुलक–प्रफुल्ल होता है तो इसके क्षरण से व्यथित, चिंतित, द्रवित एवं आक्रोशित भी होता है। यह भी रेखांकनीय है कि साहित्य की यह उपेक्षित विधा कहीं–कही नारी, दलित, आदिवासी आदि विमर्शों से प्रभावित तो अवश्य नजर आती है पर आधुनिकता व उत्तर आधुनिकता के मूल्य निषेधात्मक 'अंतवादों' से प्रायशः मुक्त है। अनेक अल्पजीवी, प्रचार लोलुप, ध्वंसधर्मी साहित्यिक विचार क्रांतियों के विपरीत यात्रा साहित्य का यह शाश्वत मूल्य सापेक्ष राष्ट्र बोध अधिक ग्राह्य व श्लाध्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अग्रवाल वासुदेवशरण–पृथिवी पुत्र, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली, सं. 2009, पृ.81*
2. *वर्मा महादेवी–सात भूमिकाएँ (सं.दूधनाथ सिंह) राजकमल प्र., दिल्ली, सं.2013, पृ.180*
3. *शुक्ल रामचंद्र–चिंतामणि, भाग–1, मलिक एंड कंपनी, जयपुर, सं.2004,पृ.54*
4. *कृष्णनाथ–अरूणाचल यात्रा, वाग्देवी प्र.,बीकानेर, सं. 2002,पृ.9*
5. *वर्मा निर्मल–धुंध से उठती धुन, राजकमल प्र. ,दिल्ली,सं.2000,पृ.129*
6. *कमलेश्वर–कश्मीर रात के बाद, किताबघर, दिल्ली, सं.2014,पृ.27*
7. *जोशी मनोहरश्याम–सीमांत डायरीः कश्मीर से कच्छ, वाणी,प्र.दिल्ली.सं.2008,पृ.92*
8. *कमलेश्वर–कश्मीर रात के बाद, किताबघर, दिल्ली, सं.2014,पृ.27–28*
9. *वेगड़ अमृतलाल–सौन्दर्य की नदी नर्मदा, म.प्र.हिंदी ग्रंथ अका., भोपाल, सं. 2014,पृ.190*
10. *मिश्र गोविंद–रंगों की गंध (भाग2),किताबघर, दिल्ली,सं.2010,पृ.369*
11. *पालीवाल कृष्णदत्त–जापान में कुछ दिन, किताबघर, दिल्ली,सं.2011,पं.224–225*
12. *भट्‌ट चंडीप्रसाद–पर्वत–पर्वत बस्ती–बस्ती, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, दिल्ली, सं.2011,पृ.23*
13. *वेगड़ अमृतलाल–सौन्दर्य की नदी नर्मदा, म.प्र.हिंदी ग्रंथ अका., भोपाल, सं.2014,पृ.22*
14. *कांकरिया मधु–बादलों में बारूद, किताबघर, दिल्ली, सं.2014,पृ.61*